वानप्रस्थ-व्युत्पत्ति और अर्थ, स्वरूप, महत्त्व, जीवन एवं कर्तव्य

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी,

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

वानप्रस्थ शब्द का अर्थ है वन की ओर प्रस्थान करना। कालिदास का सिद्धान्त 'वार्धक्ये मुनिवृत्तीनाम्' भी बताता है कि वृद्धावस्था का आ विर्भाव होने पर व्यक्ति को वन में, भोग-विलास से दूर रहकर, मुनिवृत्ति को अपनाना चाहिए। कालिदास का मत है कि जब पुत्र कुटुम्ब का भार वहन के योग्य हो जाता है, तब गृहस्थ व्यक्ति मोक्ष की साधना में लग जाते हैं। महर्षि वेदव्यास ने आयु के तीसरे भाग को वानप्रस्थ के लिए निर्धारित किया है।

वानप्रस्थ में दो शब्द हैं- 'वान' एवं 'प्रस्थ'। 'वन' से 'अण्' प्रत्यय लगाकर वान शब्द तथा 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'स्था' धातु से 'क' प्रत्यय जोड़कर 'प्रस्थ' शब्द बनता है। 'वान' का अर्थ वनसमूह होता है। प्रस्थ का अर्थ 'प्रदेश' होता है।

हमारे ऋषियों ने यह मान्यता दी है कि गृहस्थ व्यक्ति गृहस्थाश्रम सम्बन्धी कर्तव्यों का निर्वाह करने के पश्चात्, पत्नी सहित वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेशकर सकता है। इस आयु में व्यक्ति को सबका मोह त्यागकर नियमपूर्वक देवताओं का पूजन और तप करते हुए मुनिव्रत द्वारा मोक्ष की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए।

वैदिकयुगीन आरण्यक साहित्य की रचना ऐसे ही वानप्रस्थी तपस्वियों ने की थी जो अरण्य में रहा करते थे। उपनिषद् युग में वानप्रस्थ जीवन का प्रसार हुआ। गृहस्थ जीवन के पश्चात् लोग वन में जाकर एकान्त का जीवन व्यतीत करते थे और अपने ज्ञान तथा विचार की अभिवृद्धि करते थे।

कतिपय आचार्यों का मत है कि आयु के द्वितीय भाग तक गृहस्थाश्रम में रहने के बाद तृतीय भाग में अग्नि एवं भार्या के साथ व्यक्ति को वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए या पुत्र के पुत्र को देखने के पश्चात् शरीर के जर्जर हो जाने से पहले ही अपनी भार्या के भरण पोषण का भार पुत्रों को सौंपकर व्यक्ति

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

को वानप्रस्थ धर्म निभाना चाहिए। वन में जाने के उपरान्त एकाग्र मन से तप करना, नित्य पवित्र फलों एवं मूलों का आहार जुटाना, नियमित आहार करते हुए पितरों एवं देवताओं का पूजन करना चाहिए। नित्य स्नान के उपरान्त अतिथियों का पूजन कर देवपूजन और नित्य स्वाध्याय में निरत रहना चाहिए।

भारत में अत्यधिक भोग को अनुचित समझा जाता था तो कर्तव्यपलायन की प्रशंसा नहीं की जाती थी। तदनुसार वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश का यह अर्थ कभी नहीं था कि अपने कर्तव्यों का पालन किए बिनाही मुनिवृत्ति अपनाई जाए। इसीलिए वानप्रस्थाश्रम की ओर उन्मुख गृहस्थ को सचेत कर दिया गया है कि वह ऋणों से मुक्त हो ले तथा निश्चिन्त हो जाए हो जाए कि उसका परिवार उसके विना भी चल सकता है, उसका पुत्र कर्तव्यनिष्ठ हो, गृहभार धारण करने में समर्थ हो, तभी वह वनगमन करे। पचास वर्ष की आयु निर्धारित करने का भी यह कारण है कि जब तक व्यक्ति समर्थ है उसे धनार्जनादि कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। वानप्रस्थाश्रम में पहुँचकर व्यक्ति इन सांसारिक कर्तव्यों से मुक्त हो जाता है और वन के नैसर्गिक वातारण में आसानी से आत्मिक उन्नति कर सकता है। इसके साथ ही सब प्रकार के संस्कारों से शुद्ध होकर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए, वानप्रस्थी को ग्राम से निकालकर वन में रहना चाहिए। अर्थात् वानप्रस्थाश्रम ब्रह्मचर्याश्रम का ही प्रौढ़ रूप माना जा सकता है।

वानप्रस्थ जीवन में व्यक्ति त्याग, तप, अहिंसा और ज्ञान का अर्जन करता था। उसका प्रधान उद्देश्य था आध्यात्मिक उत्कर्ष तथा समस्त भौतिक स्पृहाओं से मुक्ति पाने का उपक्रम। विद्या, शरीर की शुद्धि और तपस्या की वृद्धि के लिए वानप्रस्थ का सेवन किया जाता था।इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह संयमित और कठोर जीवन का अनुपालन करता था।

वानप्रस्थी को ऐसे वातावरण और वेषभूषा में रहना चाहिए कि वह विषयासक्ति से दूर रहने में समर्थ हो। वानप्रस्थी को तीन बार स्नान का निर्देश इसीलिए दिया गया है कि उसका शरीर स्वच्छ रह सके। उसे मधु, मांस आदि रजोगुण और तमोगुण बढ़ाने वाले पदार्थों के सेवन से रोका गया है, ताकि वह सात्त्विक वृत्ति वाला ही रहे। वानप्रस्थी को अत्यधिक कष्टसहिष्णु होना चाहिए, इसीलिए उसे ग्रीष्म में

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

पञ्चाग्नि तपना, वर्षा में खुले आकाश के नीचे रहना, हेमन्त में गीले कपड़े पहिनना आदि विपरीत कार्यों को करने का निर्देश दिया गया है।

पितरों और देवताओं के लक्ष्य से तर्पण करना और देवताओं की प्रसन्नता के लिए यज्ञ करना आदि से कृतज्ञता-ज्ञापन भी वानप्रस्थी का धर्म है।अतिथिसेवा से मानवता प्रकट करना भी वानप्रस्थी के लिए अत्यावश्यक है। इस तरह सादगीयुक्त जीवन जीते हुए अपने शरीर को तप से क्षीण कर ले और पारलौकिक कल्याण के लिए प्रयत्नशील हो।

वानप्रस्थी को अग्निगोत्र सम्बन्धी हवन एवं वन में उपलब्ध पवित्र अन्नों को ग्रहण करे, पञ्चमहायज्ञों का अनुष्ठान करे, प्राणीमात्र पर अनुकम्पा करे एवं प्रतिग्रह का त्याग करे। वानप्रस्थी द्विज को दर्श-पौर्णमास, नक्षत्र-याग, नवशस्येष्टि, चातुर्मास याग तथा उत्तरायण एवं दक्षिणायन याग करना चाहिए। वह सदा विधि के अनुसार वह्नि की परिचर्या करे, किसी भी प्राणी से द्रोह न करे, निर्द्वन्द्व एवं निर्भय रहे।उसके लिए ध्यान-परायण, जितेन्द्रिय, क्रोधरहित, तत्त्वज्ञान का विचारक एवं ब्रह्मचारी होना आवश्यक है। वानप्रस्थी को चाहिए कि वह गायत्री मन्त्र के जप करते हुए भूमि पर शयन करे, प्राणियों को शरण दे, दानशील रहे तथा आलस्य का त्याग करे।

वानप्रस्थी व्यक्ति को दिन के तीसरे प्रहर में एक बार फलाहार भोजन करना चाहिए। वानप्रस्थी को त्रिकाल सन्ध्या करनी चाहिए।

महाभारतकार ने महर्षि वेदव्यास ने वानप्रस्थ आश्रम को परमात्मा की मिलन स्थली और ब्रह्मप्राप्ति का मार्ग माना है।

इस आश्रम से व्यक्ति के दो उद्देश्य अन्तःकरण की शुद्धि और समाज कल्याण साथ-साथ सिद्ध हो जाते हैं। व्यक्ति को तप, स्वाध्याय, अध्यापन तथा भगवद्भक्ति के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है। वानप्रस्थाश्रम में यथोचित आहार-विहार व्यक्ति को प्रतिष्ठित पद प्राप्त करा सकता है।

निर्धारित नियमों का पालन करते हुए व्यक्ति वानप्रस्थ जीवन का पचास से पचहत्तर वर्ष की अवस्था व्यतीत करता था। दिन में दो बार स्नान और होमानुष्ठान करना उसका परम कर्तव्य था। अतः

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

इन्द्रिय निग्रह, जीवों के प्रति दया, सांसारिकता से विरक्ति, भिक्षा पर जीविकोपार्जन आदि वानप्रस्थी का प्रधान धर्म था।

पञ्चमहायज्ञ और अतिथि सत्कार करना उसका प्रधान कर्तव्य माना गया था। मनु के अनुसार जो भोज्य पदार्थ हो, उसी से बलि (पञ्चमहायज्ञ कर्म) करे, भिक्षा (जल, कन्द, मूल, फल) दे और अतिथियों को सन्तुष्ट करे।

वानप्रस्थाश्रम के द्वारा राष्ट्रीय एवं सामाजिक दायित्व के वहन के प्रति भावी पीढ़ी को सचेत करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

वानप्रस्थाश्रम का एक मनोवैज्ञानिक महत्त्व भी है। इस आश्रम में मनुष्य में त्याग की मात्रा बढ़ती जाती है। त्याग के पूर्ण होते ही वानप्रस्थ आश्रम में मनुष्य की त्याग की भावना बढ़ती जाती है। त्याग के पूर्ण होते ही वानप्रस्थाश्रम पूर्ण हो जाता है और वानप्रस्थ व्यक्ति सहज भाव से संन्यास आश्रम में प्रवेश करता है।

वानप्रस्थ में जो सन्तोष, सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है, वह धनवान के जीवन में नहीं मिल सकती। इस आश्रम के द्वारा यह सन्देश मिलता है कि धन की उपयोगिता केवल वैयक्तिक भोग में ही निहित नहीं है, प्रत्युत सामाजिक कल्याण के लिए सर्वस्व त्याग में भी है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वानप्रस्थ आश्रम मोक्ष के मार्ग का दिगदर्शन करता तथा मनुष्य को साधना और तपस्या की ओर उत्प्रेरित करता था, अनुशासन और संयम का जीवन उसे अत्यन्त तपःशील बना देता था। वह अपने पारिवारिक और भावनात्मक सम्बन्धों को विच्छिन्न कर एकान्त और निर्जनता का जीवन व्यतीत करता था। कठोर व्यवस्थाओं और नियमबद्ध कर्तव्यों द्वारा वह अपने चरित्र और व्यक्तित्व को तपाता था। वह शनैः शनैः अपने को समाज तथा कुटुम्ब से दूर रखता जाता था और अन्त में पूर्णतः दूर हो जाता था। वह नियन्त्रण का जीवन जीता था, जिसमें काम, क्रोध, वासना, स्पृहा, असत्य, प्रतिग्रह आदि का अभाव था। ब्रह्मचर्य और सदाचारिता का जीवन उसके मन और मस्तिष्क को पूर्णतः पवित्र और निर्मल रखता था। बौद्धिक और आध्यात्मिक उन्नति उसका चरम लक्ष्य था।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi